प्रसाद स्वरूप मुफ्त में ही प्राप्त करना चाहते थे। उनकी इस भावना से क्षुब्ध होकर आचार्य द्विवेदी ने दिसंबर 1908 की सरस्वती में लेख लिखा था- यहां के मासिक पुस्तक-प्रकाशक सदा घाटे का दुखड़ा रोया करते हैं। बेचारों को घर के धान को पयार में मिलाना पड़ता है। बहुतेरे को तो यहां तक घाटा होता है कि एक बार पत्र निकालकर फिर निकालने का उन्हें साहस भी नहीं होता। इसके कई कारण हैं एक तो यहां शिक्षितों की संख्या कम है। दूसरे सामर्थ्यवान और पढ़े-लिखे लोग मासिक पुस्तकें बहुत कम पढ़ते हैं। तीसरे जो पढ़ते हैं वह गांठ के पैसे खर्च करके नहीं पढ़ना चाहते हैं, मांग-मांग कर या प्रकाशकों को धोखा देकर अपना काम निकालते हैं। इनमें वे अपना अपमान नहीं समझते। कम मूल्य देकर मांगने वालों की भी कमी नहीं है। द्विवेदी जी लेखकों के विषय-संकीर्णता की हमेशा आलोचना करते थे। वे लेखों के विषय में विविधता को बहुत महत्व देते थे। वे लेखकों को नूतनता के सृजन का प्रोत्साहन देते थे। बाकी और घिसी पिटी पुरानी बातों को नमक मिर्च लगाकर लेख के रूप में प्रस्तुत करने वाले लेखकों से वह सख्त नाराज होते थे। इन्हीं समस्याओं के निराकरण के लिए वे अपने एक लेख में लिखते हैं- हिंदी पत्रों में अधिकांश का संपादन योग्यतापूर्वक नहीं होता। क्या भाषा के लिहाज से, क्या सामयिक लेखों, नोटों और खबरों के लिहाज से, क्या विषय-बाहुल्य के लिहाज से, क्या पॉलिसी के लिहाज से, बहुत ही कम हिंदी के पत्र आजाद (कानपुर, उर्दू पत्र सन1913) की बराबरी कर सकते हैं। हिंदी पत्रों की पॉलिसी का तो यह हाल है कि जिस नीति का आज वह समर्थन करेंगे, कल ही कोई ऐसी बात लिख देंगे जो ठीक उसके प्रतिकूल है। जो खबरें, अंग्रेजी, उर्दू और मुख्य हिंदी पत्रों में निकल आती हैं, वही बहुत पुरानी हो जाने पर भी किसी-किसी हिंदी पत्र में निकलती देख दुख होता है। कभी-कभी तो छः.छः महीने, वर्ष-वर्ष की पुरानी स्पीचें टुकड़े-टुकड़े करके छापी जाती हैं।

द्विवेदी जी हिंदी सेवा को किसी ईश सेवा से कम नहीं समझते थे। वे नवोदित लेखकों को प्रोत्साहित करते थे तथा उन्हें स्वदेश और स्वभाषा के प्रति प्रेमपरक लेख लिखने की प्रेरणा देते रहते थे। देश प्रांत और समाज की उन्नति के लिए संपादक द्विवेदी जी ने हिंदी भाषा को अपनाने एवं ग्रंथालय की स्थापना पर बल दिया यथा- हमारी भाषा हिंदी है। उसके प्रचार के लिए गवर्नमेंट जो कुछ कर रही है सो तो कर रही है, हमें चाहिए कि हम अपने घरों का अज्ञान-तिमिर दूर करने और अपना ज्ञानबल बढ़ाने के लिए इस पुण्य कार्य में लग जाएं। यह काम अनेक प्रकार से हो सकता है। समाचार पत्र और सामाजिक पुस्तकें निकाल कर इस तिमिर का पर्दा कुछ-कुछ हटाया जा सकता है। अच्छी-अच्छी नई पुस्तकें लिखकर और अन्य भाषाओं के उपयोगी ग्रंथों का अनुवाद करके सुशिक्षा और ज्ञान की वृद्धि की जा सकती है।

सन् 1909 तक सरस्वती उत्कृष्ट पत्रिका के रूप में स्थापित हो गई थी। इसके लिए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी को जी तोड़ मेहनत करनी पड़ी। फलस्वरुप वे अनिद्रा के रोगी हो गए और उन्हें एक वर्ष का अवकाश लेना पड़ा। सरस्वती के लिए उन्होंने दिन-रात एक कर दिया था। लेखकों से लेख लिखवाना तो कोई द्विवेदी जी से सीखे। इसके लिए वे भाषा और राष्ट्र की सीमाओं को भी बाधक नहीं मानते थे। अपने पत्रिका के लिए ज्ञान-विज्ञान से लेकर कथा साहित्य और कविता तक उपर्युक्त लेखक ढूंढने में उन्होंने अथक परिश्रम किया। ब्रिटिश गुयेना, दक्षिण अफ्रीका, अमेरिका, ब्रिटेन, जापान तथा दुनिया के किसी भी कोने में उन्हें अपने काम का आदमी दिखाई भर दे जाए उससे वे लेख तो लिखा ही लेते थे। उसके अस्तित्व की भनक भर उनके कान में पड़ जाए, वे उसे खोज निकालते में कोताही नहीं बरतते थे। उनके इसी विशेष गुण के बारे में विजय दत्त श्रीधर अपनी पुस्तक में लिखते हैं- एक बार जब महावीर प्रसाद द्विवेदी उस समय के प्रख्यात पत्रकार संत निहाल सिंह से मिलने आनंद भवन गए तो उनसे सरस्वती के लिए लिखने को कहा। जब संत निहाल सिंह ने कहा कि वह तो अंग्रेजी में लिखते हैं तब उन्होंने उत्तर दिया कि कोई बात नहीं हम उसका अनुवाद करा लेंगे तब से संत निहाल सिंह के लेख सरस्वती में छपने लगे।

द्विवेदी जी का हिंदी साहित्य के प्रति विशेष योगदान हिंदी साहित्य को रीतिकालीन मांसलता से निकालकर लोकमानस की यथार्थ भावभूमि पर खड़ा करना है। द्विवेदी जी ने महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की रचना जूही की कली अपनी प्रतिबद्धता के कारण ही वापस कर दी थी। उसके बारे में डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं- साहित्य के विशिष्ट क्षेत्र में द्विवेदी जी ने रीतिवाद-विरोधी अभियान का संगठन और नेतृत्व किया। जैसे सामाजिक क्षेत्र में वह सामंती रोगियों के आलोचक थे, वैसे ही साहित्य क्षेत्र में उन्होंने दरबारी साहित्य की परंपराओं, नायिकाभेद, अलंकारशास्त्र, चमत्कारवाद की तीव्र आलोचना की। इस रीतिवादी धारा से भक्ति-साहित्य और भारतेंदु युगीन गद्य-लेखन को अलग करते हुए उन्होंने यथार्थपरक साहित्य रचना के नए सिद्धांतों की रूपरेखा स्थिर की।

सही मायने में द्विवेदी युग में ही हिंदी पत्रकारिता का साहित्यिक और सांस्कृतिक रूप निखरा। वह बड़े दायित्व की ओर मुड़ी और इसका श्रेय निःसन्देह आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को जाता है। द्विवेदी जी ने अपने संपादनकाल में नवोदित लेखकों, कवियों को ना केवल सरस्वती के माध्यम से प्रतिष्ठापित किया, बल्कि स्वयं भी छद्म नामों से लेख लिखकर लेख पूर्ति करते थे। बाद के दौर में महत्वपूर्ण कवियों और लेखकों में गिने जाने वाले लोग सरस्वती से ही सीखकर अपनी पहचान बना सके। आचार्य द्विवेदी ने ब्रज-अवधि और उर्दू-संस्कृत के बीच डगमगाती हिंदी भाषा को खड़ी बोली का आधार दिया। उनके द्वारा खड़ी बोली के परिष्करण और परिमार्जन के कार्य को भुलाया नहीं जा सकता। जब तक हिंदी साहित्य रहेगा दिवेदी जी का नाम सदैव स्मरणीय रहेगा। उनके द्वारा हिंदी साहित्य की सरस्वती के माध्यम से की गई सेवा सदैव उनकी मधुर याद दिलाती रहेगी। ■